॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सामवेदीय

आरुणिकोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

संन्यास-ग्रहणकी विधि तथा संन्यासके नियम

ॐ—प्रजापतिके उपासक अरुणके पुत्र आरुणि ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ जाकर बोले—'भगवन्! किस प्रकार मैं समस्त कर्मोंका त्याग कर सकता हूँ?' ब्रह्माजीने उनसे कहा—'अपने पुत्र, भाई-बन्धु आदिको, शिखा, यज्ञोपवीत, यज्ञ एवं स्वाध्यायको तथा भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक एवं अतल, तलातल, वितल, सुतल, रसातल, महातल और पातालको—इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका त्याग कर दे। केवल दण्ड, आच्छादनके लिये वस्त्र तथा कौपीन धारण करे। शेष सब कुछ त्याग दे'॥ १॥

'गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी हो या वानप्रस्थ हो, यज्ञोपवीतको भूमिपर अथवा जलमें छोड़ दे। लौकिक अग्नियोंको अर्थात् अग्निहोत्रकी तीनों अग्नियोंको अपनी जठराग्निमें लीन करे तथा गायत्रीको अपनी वाणीरूपी अग्निमें स्थापित करे। कुटीमें रहनेवाला ब्रह्मचारी अपने कुटुम्बको छोड़ दे, पात्रका त्याग कर दे, पवित्री (कुशा)-को त्याग दे। दण्डों और लोकोंका त्याग करे—इस प्रकार उन्होंने कहा। इसके बाद मन्त्रहीनके समान आचरण करे। ऊर्ध्वगमन अर्थात् ऊर्ध्वलोकोंमें जानेकी इच्छा भी न करे। औषधकी भाँति (स्वाद-बुद्धि न रखकर, केवल शरीर-रक्षाके लिये) अन्न ग्रहण करे, तीनों संध्याओंके पूर्व स्नान करे। संध्याकालमें समाधिमें स्थित होकर परमात्माका अनुसन्धान करे। सब वेदोंमें आरण्यकोंकी आवृत्ति (पाठ एवं मनन) करे, उपनिषदोंकी आवृत्ति करे। उपनिषदोंकी आवृत्ति करे'॥ २॥

'निश्चय ही ब्रह्मको सूचित करनेवाला सूत्र—ब्रह्मसूत्र मैं ही हूँ, यों समझकर त्रिवृत्सूत्र अर्थात् उपवीतका त्याग करे। इस प्रकार समझनेवाला विद्वान् **'मया संन्यस्तम्, मया संन्यस्तम्, मया संन्यस्तम्'** (मैंने संन्यास लिया, मैंने सर्वत्याग कर दिया, मैंने सब कुछ छोड़ दिया)—यों तीन बार कहकर—

अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि
वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय॥*

—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित बाँसका दण्ड और

---

* सब (हिंस्र तथा अहिंस्र) प्राणियोंको अभय प्राप्त हो—किसीको भी मुझसे भय न हो; क्योंकि मुझसे ही सारा विश्व प्रवर्तित होता है। दण्ड! तुम मेरे मित्र हो, मेरे ओजकी रक्षा करो। तुम मेरे मित्र हो, वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रके वज्र हो। वज्र! मुझे सुख प्रदान करो। मुझे संन्यास-धर्मसे गिरानेवाला जो भी पाप हो, उसका निवारण करो।

कौपीन धारण करे; ओषधिकी भाँति भोजन करे; ओषधिकी भाँति अल्पमात्रामें भोजन करे; जो कुछ मिल जाय वही खा ले। आरुणि! ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा सत्यकी यत्नपूर्वक रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो॥ ३॥

'इसके पश्चात् परमहंस परिव्राजकोंके लिये भूमिपर ही आसन और शयन आदिका, ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहनेका तथा मिट्टीका पात्र, तूँबी अथवा काष्ठका कमण्डलु रखनेका विधान है। संन्यासियोंको काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, दर्प, इच्छा, परनिन्दा-ममता, अहङ्कार आदिका भी परित्याग कर देना चाहिये। वर्षा ऋतुमें एक स्थानमें स्थिर होकर रहे; शेष आठ महीने अकेला विचरण करे अथवा एक और साथी लेकर, दो होकर विचरे, दो होकर विचरे'॥ ४॥

'इस प्रकार जाननेवाला जो विद्वान् (संन्यासी होना चाहे) वह उपनयनके अनन्तर अथवा पहले भी उपर्युक्त विधिसे अपने माता-पिता, पुत्र, अग्नि, उपवीत, कर्म, पत्नी अथवा अन्य जो कुछ भी हो—सबका परित्याग कर दे। संन्यासियोंको चाहिये कि हाथोंको ही पात्र बनाकर अथवा उदरको ही पात्रके रूपमें लेकर भिक्षाके लिये गाँवमें प्रवेश करे। उस समय **'ॐ हि ॐ हि ॐ हि'** इस उपनिषद्-मन्त्रका उच्चारण करे। यह उपषिद् है; जो इस उपनिषद्को निश्चयपूर्वक यों जानता है, वही विद्वान् है। पलाश, बेल, पीपल अथवा गूलरके दण्ड, मूँजकी मेखला तथा यज्ञोपवीत (अर्थात् द्विजत्वके बाह्य उपकरणों)-को त्यागकर जो इस प्रकार जानता है, वही शूरवीर है। जो आकाशमें तेजोमय सूर्यमण्डलकी भाँति, परम व्योममें चिन्मय प्रकाशद्वारा सब ओर व्याप्त है, भगवान् विष्णुके उस परम धामको विद्वान् उपासक सदा ही देखते हैं। साधनामें सदा जाग्रत् रहनेवाले निष्काम उपासक ब्राह्मण वहाँ पहुँचकर उस परम धामको और भी उद्दीप्त किये रहते हैं, जिसे विष्णुका परम पद कहते हैं। वह परम पद निष्काम उपासकको प्राप्त होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह उक्त फलका भागी होता है। यह महा उपनिषद् है'॥ ५॥

॥ सामवेदीय आरुणिकोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

दो विद्याएँ

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥
ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः। पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः॥

(ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १७-१८)

दो विद्याएँ जाननेकी हैं—'शब्दब्रह्म' और 'परब्रह्म'—शास्त्रज्ञान और भगवान्का यथार्थ स्वरूपज्ञान। शास्त्रज्ञानमें निपुण हो जानेपर मनुष्य भगवान्को भी जान लेता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ग्रन्थका अभ्यास करके उसके ज्ञान-विज्ञानरूप तत्त्वको प्राप्त कर ले, फिर उस ग्रन्थको वैसे ही त्याग दे, जैसे धान चाहनेवाला मनुष्य धानको लेकर पुआलको खलिहानमें छोड़ देता है।